क्या कहूँ

क्या कहूँ
किसके लिये मैं गा रही
दूर से अव्यक्त
कोई ध्वनि निरन्तर आ रही

रेत के अम्बार में जल-बिंदु
सा अस्तित्व मेरा
हो न पाया है समाहित
कहीं भी व्यक्तित्व मेरा

मैं पथिक
अनजान नगरी
राह भी भरमा रही

चूम कर तट ,मंदिरों के
शिखर को मन में उतारा
सिन्धु की परिकल्पना को
रचा पल प्रतिपल सँवारा

युगों की है
प्यास हठ कर
जो अधर पर आ रही

आज तक पहचान न पाई
समय की विषम गति को
नदी के अन्तर को मथती
भँवर की उस भ्रमित मति को

रज्जु पर जैसे
नटी इठला रही
बल खा रही

डॉ. मधु प्रधान

किसने फिर मल्हार गाया है

सोच रहे देहरी पर ठिठके
क्या-क्या खोया क्या पाया है

चलने को पग उद्धत फिर भी
पीछे मुड़-मुड़ देख रहे हैं
तपते अन्तर को थपकी दे
ठंडी सांसें फेक रहे हैं

जिसमें रम कर उम्र गुजारी
वह केवल भ्रम है माया है

हाट उठ गई है सपनों की
इनका मूल्यांकन है जीरो
किस पर क्या बीती इससे क्या
बंसी बजा रहा है नीरो

मौन हो गये शब्द टूट कर
वक्त,वक्त ऐसा लाया है

भावों की भारी गठरी का
बोझ /कठिन है इसे उठाना
झीनी-झीनी हुई चदरिया
बिखर गया है ताना-बाना

बैठ झरोखे में सुधियों के
किसने फिर मल्हार गाया है

ख्योरा , नवाबगंज ,कानपुर

ISSN:2583-8849